प्राचीन भारत में कृषि आदिकाल से मौर्य काल तक

डॉ0 शिवजी सिंह

प्राचीन काल से ही भारतीय उपमहाद्वीप के अर्थव्यवस्था का भेरुदण्ड कृषि ही था। लोग कृषि कार्य में अत्यधिक संलग्न थे तथा कृषि से संबंधित उत्पाद को उत्पादित कर व्यापार-व्याणिज्य से संबंधित अनेक हाट का निर्माण किए।

जब मानवजाति का प्रादुर्भाव हुआ था, वे आखेटक एवं यायावर जीवन व्यतीत करते थे। नित्यदिन जानवरों को मारकर अपने क्षुधा को भरते थे। प्रागैतिहासिक काल के प्रारंभिक अवस्था में कृषि का कोई प्रादुर्भाव नहीं था। लोग कंद-मूल एवं जानवरों के मांस खाते थे अपने भूख को मिटाते थें। ये भारतीय उपमहाद्वीप में दक्षिण भारत, मघ्यभारत, पश्चिमोत्तर भारत में नदी घाटियो के पास बसे हुए थे। इनके बीच न ही कोई वर्ग था और न ही समाज। मघ्य पाषाण काल में आग के अष्किार ने लोगों के अपने भोजन के स्वाष्टि बनाने में मदद की तथा लोग एक जगह से दूसरे जगह वास करने के लिए मदद की। लेकिन, नवपाषाण काल तक मानव जीवन में क्रांतिकारी परिवर्त्तन हुए। वे आखेट से कृषक बन गये। इनका निश्चित स्थानो पर वास करने लगे। मोटे तौर पर यह काल 9000 ई0 पू0 से 2500 ई0 पू0 तक था। निश्चित घरों के रूप में हमें साक्ष्य काश्यिर के पुर्णहोय से प्राप्त गर्तअवास था। ये भारत में दक्षिण भारत, मध्यभारत एवं पश्चिम भारत में बसे हुए थे।[1] इस काल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता कृषि एवं कृषक कार्य का निर्माण था। नवपाषाण युग के निवासी सबसे पुराने कृषक समुदाय के थें। वे पत्थर की कुदालों (हो) और खोदने के दण्डो से जमीन खोदते थें।[1] कृषि से संबंधित प्रथम साक्ष्य मेहरगढ़ से प्राप्त होता है जहाँ लोग गेहूँ, जौ एवं राई उपजाते थे। ये कृषक उत्पादन से जीवन निर्वाह हेतु ही था। इनका कोई अधिशेष उत्पादन नहीं था फिर भी भारतीय उपमहाद्वीप में चावल, गेहूँ, जौ, आदि कई महत्वपूर्ण फसलों का उत्पादन होने लगा था। भारतीय उपमहाद्वीप में कई गाँव बसे मानव सभ्यता के द्वार पर पॉव रखा।[2]

ताम्रपाषाण काल में बड़े गाँव का निर्माण हुआ। लोग कृषि से संबंधित अन्य उत्पादन प्रक्रिया में भी संलग्न रहे। अधिशेष उत्पादन की ओर सभ्यता बढ़ी। सिंधुकाल (2500 ई0 पू0 से 1750 ई0 पू0) तक अनेक व्यापारिक नगरों से उदय हो गया। इसका मुख्य आधार कृषि एवं व्यापार-वाणिज्य का विकास था। सिन्धु क्षेत्र उपजाऊ मैदानी भाग था, जहाँ हर वर्ष बाढ़ से जलोढ़ मिट्टी का निक्षेप का निर्माण होता था। कृषि से संबंधित महत्वपूर्ण साक्ष्य से पक्की मिट्टी के हल के प्रारूप का था कालीबांगा प्राक्र हड़प्पाकालीन हलरेखा मिला जिसे स्पस्ष्ट होता है कि सिन्धु कालीन लोग हल का प्रयोग करते थें। शायद हल लकड़ी की बनी होती थी।[3] सिन्धु कालीन लोग गेहूँ, जौ, राई, मटर, चावल (लोथल) आदि फसल उपजाता था तथा अधि शेष उत्पादन को बाजारो में बेच देते थे। उससे अनेक व्यापारिक नगरों का उदय हुआ। वैदिक काल में तो स्पष्टतः चार वर्णो ऋग्वेद, दशम् मण्डल) उल्लेख मिलता है। तृतीय वर्ग (ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र वैश्य कृषि एवं उत्पादन से जुड़ा था अन्य तीन वर्ण वैश्व वर्ग पर ही निर्भर थें। इस काल में भी गेहूँ, जौ, राई, चावल (क्रीही) आदि का उत्पादन करते थें।

वाद के काल में सामाजिक स्तर पर कृषिजीवी व्यक्तियों को चार श्रेणियो में रखा जाता था। प्रथम ऐसे भू-स्वामी है जिनके पास काफी अधिक भू-सम्पत्ति हुआ करती थी और जो कभी भी स्वयं अपने हाथों से खेती कार्य न ही करते थें बहिक या तो वे मजदूरो स्वयं अपने हाथो से खेती कार्य न ही करते थे बल्कि या वे मजदूरों से काम लेते थे या बटाई में या अन्य अनुबंध ो के आधार पर ही दूसरो से खेती का कार्य सम्पन्न करवाते थें। दूसरी श्रेणी में ऐसे किसान थे जो खेत का

बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर

मालिक तो थे ही खुद खेती कार्य भी करते थे जिन्हें किसान मालिक कहा जा सकता है। तीसरी श्रेणी में बटाईदार किसान थें जो दूसरे की जमीन में उपज की बटाई के बदले काम करते थे जो उसमें वे पूँजी लगाते थें तथा शारीरिक श्रम भी करते थें और चौथी श्रेणी में भूमिहीन किसान थें जो शायद खेतीहर मजदूर दास हुआ करते थें।[4] जातक तथा बौद्ध ग्रंथो में प्रथम श्रेणी के किसानों का उल्लेख मिलता है जिनके पास काफी जमीन थी और वे साधन सम्पन्न माने जाते थें। यद्यपि ऐसे लोग अपने व्यापार के निहित शहरों में ही रहते थें। ये लोग अपनी जमीन की देखभाल करने के लिए बीच-बीच में गाँवों में जाया करते थें तथा अपने कर्मचारियों के माध्यम से अपनी जमीन की देख-भाल करते थें। श्रावस्ती के अनाथ पिंडक भी कभी-कभी गाँवों में कर वसूलने के नियमित जाया करते थें।[6] कुछ किसान जैसा की जातको से जानकारी मिलती है कि साधनों की कमी के कारण ये कभी-कभी किसान अपने पड़ोसियों से बैल माँग कर अपने खेत का कार्य किया करते थे।[7] खेत में जुताई के लिए कभी-कभी कुछ किसानों को बीज आदि भी कर्ज के रूप में लेता पड़ता था।[8]

प्राकृतिक दुर्योग के कारण उत्पन्न परिस्थति में गरीब और साधनहीन किसानों को कर्ज लेने के लिए मजबूर होना पड़ता था इस बात की पुष्टि जातक कथाओं से होती है वहाँ चर्चा है कि श्रावस्ती के एक सम्पन्न भू-स्वामी ने एक सामान्य किसान को कर्ज दिया था।[9] साहित्य में ऐसे संकेत का उल्लेख मिलता है कि सूखे और आकाल की स्थिति में किसान आपास में मिलकर एक साथ ही राज भवन में राजा को उलाहना भी देने गये थे। तीसरी श्रेणी के किसानों में बटाईदार होते थें। मौर्य काल में किसानों को राज्य की तरफ से काफी सहयोग मिला परिणामस्वरूप जो अबतक केवल कष्टज़ि में मजदूर थें उन्हें भूमि में बटाईदार दी जाने लगी।[11] कौटिल्य ने ऐसे किसानों के लिए आधा हिस्सा निर्धारित करते हुए भी यह प्रस्ताव रखा कि उन्हें स्वयं कोई कष्ट सहे बिना जितना अधिक हो सके राज्य को हिस्सा देना चाहिए।[12] मनु ने बटाईदार किसानों के उत्पादन का आधा हिस्सा देने की बात कही।[13] इस काल में अनेक श्रेणी संगठनों का उदय हुआ जो व्यापार-वाणिज्य के साथ कृषि कार्यो को बढ़ाने वाले थे। ये श्रेणी संगठन उत्पादन विशेष से संबंधित थें जिससे उत्पादन का बढ़ावा मिला। समाज में हिस्सा ऐसे व्यक्तियों का भी जो किसान थें, लेकिन उनके पास न तो अपनी जीमन थी और न कृषि व्यवस्था। ऐसे भूमिहीन कृषिजीवी मजदूर थें जिनकों राज्य की ओर से सहायता दी जाती थी कृषि करने के लिए इनकी सीमा क्षेत्रों पर जमीन आवंटित करने की चर्चा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उपलब्ध है। ऐसे व्यक्ति को उपज का चतुर्थांश या पंचयांश लेना स्वीकार करते थे तथा तथा राज्य की ओर से ऐसे व्यक्ति को बैल, बीज, पूँजी भी देने की अनुशंसा की गई है।[15]

उदाहरणों के देखने से ऐसा लगता है कि खेती में बडें पैमाने पर कृषि-मजदूरों को लगाया जाता था जिनको प्राचीन भारत का चतुर्थ वर्ग कहा गया है और जिनको जातक तथा अन्य ब्राह्मण स्त्रोतो के अनुसार व्यापार करने की भी अनुमती थी[16] लेकिन उनमे व्यापार करने वालों की संख्या बहुत ही कम थी और यदि थी भी तो वस्तुत: ऐसे लोग बहुत छोटे व्यापारी रहे थे।

छठी सदी इ0पू0 भारत में गौतमबुद्ध और बौद्ध ध र्म तथा महावीर और जैन धर्म तथा विभिन्न समान स्तरीय गैर-वैदिक विचार धाराओ के प्रभाव के कारण शुरू से ही शिल्प और व्यापार तथा अन्य विभिन्न प्रकार के पेशाओं का संगठन बना लेना तथा राज्य के प्रर्याप्त कर प्रदान करने के परिणाम स्वरूप एक बड़ी जनसंख्या ने अपने को वर्ण-व्यवस्था से मुक्त कर लिया तथा अपने संगठन को राज्य से स्वतंत्र बनाते हुए चुपके से अपने सदस्यों से जुड़े न्याय संबंधी कार्य भी अपने में समटते हुए जो स्थिति निर्मित की उससे कृषि को नये ढंग से सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा राज्य ने इसके लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन भी प्रदान करने के नीति अपनाई। नीजि कृषि व्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा। लोग खेती करने लगे, खेत परती पड़ने लगा और राज्य की नियम बनना पड़ा कि

खेती नहीं करने वालों की जमीन राज्य ले लेगा। ऐसे में उत्पादन नहीं होने से राज्य के समक्ष समस्या उत्पन्न हाने लगी। अनेक अकाल का भी वृद्धि हुआ।

मौर्यकाल में में राज्य, प्रायोजित कृषि का भी उल्लेख मिलता है अर्थशास्त्र में वर्त्ता का उल्लेख है। जिसमें कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य सम्मिलित है। किन्तु मौर्य शासको द्वारा प्रतिष्ठापित राष्ट्रनीति में कृषि को ही स्पष्ट वरीयता प्रदान की गई है। वास्तव में मौर्य साम्राज्य के स्थापना से पहले ही भारत कृषि क्षेत्र में विकसित हो चुका था। किन्तु मौर्य शासक की आर्थिक नीति के परिणाम स्वरूप उसने केवल आत्म निर्भरता के युग से निकल अतिरिक्त उत्पादन के युग मे प्रवेश प्राप्त किया अपितु राजकीय आय के प्रमुख स्त्रोत के रूप में भी कृषि को सम्मानित होने लेने का गौरव प्रदान किया। लगता है जो आज भी इसका उल्लेखनीय महत्व है।

मौर्यकाल में कृषिः

खाद्यान्न प्राप्ति के स्त्रोत के अलावा राज्य के अनेक उद्योगो के लिए कच्चा माल भी सुलभ कराती थी। गन्ना, चावल तथा आम आदि फलों से शराब बनाने, सिरका तैयार कराने का कार्य तथा उसके विक्रय से राज्य को आय की प्राप्ति की पुरी व्यवस्था सुत्राध्यक्ष को करनी पड़ती थी। और अनेक निर्देशन और निरीक्षण मे शराब बनाई एवं बेची जाती तथी[17] कृषि जनित कच्चेमाल में वृक्षो की छाल, कपास, रेशम, सन और क्षौम आदि से धागे बनवाने, वस्त्र एवं रस्सी तैयार कराने तथा उनके विक्रय आदि का प्रबन्धन का दायित्व सूत्राध्यक्ष का होता था[18] कृषि का अभिप्रायः मात्र कर्षण क्रिया ही नहीं था बल्कि उसके अन्तर्गत बीज प्रबंधन कृषि संबंधी उपकरण तथा पशु आदि भी सम्मिलित थे।[19]

कृषि को मौर्य काल

में काफी प्रधानता था। विजय अभियान के समक्ष राजा कृषि प्रधान राज्यों पर पहले अधिकार करने का निर्णय लेता था। कृषि को ही राजकीय आय का प्रमुख स्त्रोत बनाने के उद्देश्य से ही ग्रामीण क्षेत्र में कुशल प्रबंधक पर कौटिल्य ने विशेष ध्यान दिया था। इस उद्देश्य से समाहर्त्ता राजकीय आय का लेखा-जोखा वाला सर्वोच्च अधिकारी वह जनपद अथवा ग्रामीण क्षेत्र के चार वर्गो में विभक्त करते हुए इस ग्रामों को उत्तम, मध्यम एवं कनिष्क की तीन कोटियों में सूचीवद्ध किया।

निष्कर्षः

इस प्रकार मौर्य तक आते-आते प्राचीन कृषि व्यवस्था राजश्रय प्राप्त उद्योग प्रबंध में सम्मिलित हो गई। इसका श्रेय मौर्य दूरदर्शी शासको का भी था। मौर्यकाल में कृषि को उद्योग का दर्जा मिला।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. शर्मा रामशरण, प्राचीन भारत , पृ0-44
2. शर्मा रामशरण, प्राचीन भारत पृ0-44
3. शर्मा रामशरण, प्राचीन भारत पृ0-64
4. राम शशिकांत, प्राचीन भारत में व्यवस्यिक समुदाय, पृ0-99 -100.
5. बोस, अतीन्द्रनाथ, सोशल एण्ड रूरल इकॉनॉमी आँव नांदशर्न इंडिया.
6. जातक, 1: 83, 121, 2.267, सात खण्ड, अनुक्रमणिका पृ0-67
7. 2 सं0, सं0, 257
8. 2 सं0, सं0, 103
9. 2 सं0, सं0, 223
10. 2 सं0, 5 सं0, 256
11. अर्थशास्त्र, 313 (गोरौल) वाचस्पति (हिन्दी व्याचारकार) बराणसी
12. अर्थशास्त्र, 313 (गोरौल) वाचस्पति (हिन्दी व्याचारकार) बराणसी 2.24
13. मनुस्मृति, 04.253 हिन्दी अनुवाद सहित, चौखश्या संस्कृत सीरिज, वाराणसी
14. जातक, 04, सं0-446
15. अर्थशास्त्र, 02, 24
16. अर्थशास्त्र 02, सं0-05
17. कौटिल्य का अर्थशास्त्र आर0 पी0 कांगले बम्बई,2.25
18. कौटिल्य का अर्थशास्त्र आर0 पी0 कांगले बम्बई 2.23
19. पतंजति का महाभाष्य, 03.01.26, 02.33 गर्वमेन्ट ऑफ इण्डिया, पब्लिकेशन दिल्ली 1967